Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity
ISSN: 2279-0233
Continuous issue-23 | April – May 2016

'बलचनमा' में दलित-चेतना

मेरा विवेच्य विषय नागार्जुन लिखित चरित्र प्रदान उपन्यास 'बलचनमा' है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक बालचंद्र या बालचन निम्नश्रेणी का ग्रामीण युवक है। वह अनेक अत्याचार परिस्थितियों से गुजरता हुआ अंत में किसानों की सत्व-रक्षा के आंदोलन का सक्रिय अंग बन जाता है। इसीलिए तो डॉ. सुषमा धवन का कथन है कि 'यह एक साधनहीन, परिश्रमी और ईमानदार किसान के जीवन की गाथा है।'[1] किसी ने 'बलचनमा' को प्रेमचंद जी के ''गोदान' की अगली कड़ी'[2] माना है। जब कि डॉ.रामदरश मिश्र ने लिखा है- 'पूरे उपन्यास में किसान का दुःख-दर्द और संघर्ष व्याप्त है तथा मानवीय अधिकारों को जकड़नेवाली शोषक, जर्जर मान्यताओं, वर्ग-व्यवस्थाओं पर कलात्मक प्रहार किया गया है।' [3]

'बलचनमा' बिहार के ग्रामीण जीवन पर आधारित उपन्यास है। इसका नायक है बलचनमा। डॉ.बेचन जी ने ठीक ही लिखा है कि ''नागार्जुन ने बलचनमा के रूप में भारतीय जीवन के एक ऐसे पात्र को लिया है, जो कभी भारतीय साहित्य का विषय नहीं बना था।'' [4]

बलचनमा देहाती और निर्धन परिवार का अनपढ़ युवक है और उसकी चेतना आरंभ से ही अत्यंत प्रखर है। उसमें विद्रोह की चिनगारी है। भाग्य और ईश्वर इच्छा को वह अंतिम सत्य मानने को तैयार नहीं है। बलचनमा सदियों से पीड़ित, शोषित, अत्याचार से त्रस्त किसान-संघर्ष के मैदान में खड़ा होकर शोषकों को परास्त करने का प्रयत्न करता है।

बलचनमा अनेक प्रकार के अन्याय और शोषण का भोग बन चुका है। वह नंगे-सूखे जीवन का भुक्तबोगी है, श्रम करता है, चरवाहा से बहिया, बहिया से कॉग्रेसी, वोलन्टियर, स्वयंसेवक बनता है। नौकर से खेत-मजदूर और फिर किसान बनता है। आगे चलकर वह किसान नेता के रूप में चित्रित किया गया है। अपने

गाँव के उसके बड़े कटु अनुभव हैं। वह अधिकार के प्रति जागरूक है। उसने संघर्ष को जीवन का मूल मंत्र स्वीकार कर लिया है। "..जमीन नहीं छोडेंगे, चाहे कुछ भी हो जाय।"[5] - का उद्घोष करता है। बलचनमा उस अवस्था का स्वीकार कर लेता है जब कि अपने अधिकार के लिए संघर्ष अनिवार्य हो जाता है। इसमें समाजवादी विचार की मूल अभिव्यक्ति मिलती है। आधुनिक व्यवस्था पर उसके निष्कर्ष मननीय हैं। नवीन शासन-सत्ता में निहीत स्वार्थ पोषक वर्ग की घूसपैठ हो चुकी हैं, शोषक बन बैठे हैं। "...यही जमींदार कॉग्रेसी बनकर लोगों को ठगते फिरते हैं। यही भतीजा बाबू मिनिस्टर भी हो जायें, तब तो हुआ। ऐसे मम्बर से तो हमारे इलाके का बँटाधार हो जायेगा, पानी में आग लग जायेगी।"[6]

यहाँ उन प्रवृत्तियों का संकेत मिलता है जो समाज के शोषित वर्ग में उफन रही है। शोषितों में यह भावना दृढ हो चुकी है कि उनका उद्धार सुविधा भोगी समाज नहीं कर सकता। गरीबों का उद्धार गरीबों के संघर्ष से ही हो सकता है। 'बलचनमा' के माध्यम से लेखक ने समाजवादी चेतना का आशावादी विकल्प प्रस्तुत करता है। 'बलचनमा' में 'अलग-अलग वैतरणी' के हलवाहे की निरीहता नहीं, अपितु अधिकार के लिए संघर्ष की तत्परता है।

लेखक ने बलचनमा को यद्यपि एक पात्र के रूप में कथा के मंच पर प्रस्तुत किया है किन्तु वास्तविकता यह है कि वह एक किसान ही नहीं अपितु अपनी गरीबी में किसी प्रकार गुजर-बसर करनेवाले समष्टिगत रूप में किसानों का एक सशक्त प्रतीक है। उसका पिता ललचनमा जमींदारे के द्वारा मारा जाता है। एक साधारण सी भूल पर। महज़ दो किसुनभोग आम ही तो उसने चुराये थे। मझले मालिक के द्वारा इतनी गलती पर वह मारा गया। जमींदारों द्वारा दी गई गालियाँ इन दीन-हीन खेतिहरों को बराबर ही सुननी पड़ती है। इसका स्पष्ट परिचय बलचनमा की अपनी स्थिति से मिल जाता है। जमींदार द्वारा गधा, सुअर, कुत्ता और उल्लू आदि निकृष्ट संबोधनों को सुनते-सुनते बलचनमा के कान जैसे बहरे से हो गए थे। गरीबी का शिकार बलचनमा, स्त्रियों पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार और निर्मम व्यवहार से बहुत ही क्षुब्ध है। उसका हृदय घृणा और आक्रोश से भर उठता है- "गरीबी नरक है भैया, नरक। चावल के चार दाने छींट कर बहेलिया जैसे चिड़ियों को फँसाता उसी तरह दौलत वाले गरज़मंद औरतों को फँसा मारते हैं। किसी की इज्ज़त आबरू बेदाग रहने देना उन्हें बर्दाश्त नहीं था क्योंकि मालिक जब जवान थे तो इसी गाँव में दुअन्नी के बदले लड़की मिलती थी।"[7]

बलचनमा यथार्थ की जमीन पर नये संतुलन की खोज है। बलचनमा बदले हुए जीवन संदर्भों को समझ रहा है किन्तु यह समझना उपर से लदा नहीं है। किन्तु उस जीवन-यात्रा में प्रारंभ हुआ है जो मझले मालिक की मंजूरी से पटना, फूलबाबू-मोहन बाबू की सेवा, पटना से सुराजी आश्रम और मधुबनी दरभंगा सब और की सफ़र करके आया है। और सुनता है कि अंग्रेज चले जाएँगे, कॉग्रेस की मिनिस्टरी बनेगी और जमींदारी भी नहीं रहने पायेगी लेकिन यह भी जानता है कि यही जमींदार कॉग्रेसी बनकर लोगों को ठगते-फिरते हैं।

और इसके समझने के लिए एक समाजवादी अखबार क्रान्ति भी उसकी बस्ती में आता है। बच्चू के घर बैठकर बलचनमा की मँड़ली पंक्ति-पंक्ति को सुनती है। ग्रामीण संस्कृति की और शहरी राजनीति और सभ्यता का संक्रमण तीव्र है किन्तु बलचनमा शहर में रहना नहीं चाहता। वह शहर की नौकरी छोड़कर गाँव में आकर रहता है। खेती करता है और सद्गृहस्थ का जीवन बिताता है। श्रम में उसकी निष्ठा है। इस निष्ठा का पाठ भी उसने चरवाहे के जीवन से सिखा था। जिस प्रकार का वह जीवन भोगना चाहता है वह अस्तित्व की लड़ाई की मज़बूरी है जो आदमी को क्रांति की और आकृष्ट करती है। यह लड़ाई शहरी बौद्धिक से भिन्न है। यही नागार्जुन की सफलता है। एक खास बात यह है कि "बलचनमा खुद शहर और बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों के संपर्क में आया है। महपुरा के खेतीहर आंदोलन की रहनुमाई डॉ. रहमान और राधेबाबू ने की थी। बलचनमा वोल्टियरों का मुखिया बना था।"[8] वह अच्छी तरह जानता है कि "पैसे के जोर के सामने नौकरशाही सलाम करती है। इनका मुकाबला सिधाई से नहीं होता। जमींदार और सरकारी अफसर दूरजोधन ठहरे। उनके जुधिस्थिल नहीं पस्त कर सकते भैया। पिटाई पर पिटाई खाना और भेड़ बकरी की तरह पकड़ाकर जेल चले जाना बहादुरी नहीं है। ऐसी सिधाई से पूजा तुम्हारी हो तो जमीन सूई की नोंक पर भी नहीं मिलने की, हाँ।"[9]

इस प्रकार 'बलचनमा' उपन्यास में पहली बार नागार्जुन ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में बँधुआ मजदूर, खेतिहर मजदूर और किसानों के तीखे संघर्ष को अभिव्यक्त किया है। राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर वर्ग-संघर्ष का व्यापक चित्रण भी इसमें है। जमींदारों द्वारा भूमिहीन किसानों से बेगार लेना, काम नहीं करने पर उनकी पिटाई करना, किसान-मजदूर की बहू-बेटियों को बलात् भोगना आदि जमींदारों के अत्याचारों की ओर उपन्यासकार ने संकेत किया है। बलचनमा का मझले मालिक से यह कथन उसकी चेतना का सुंदर उदाहरण है- "बेशक ! मैं गरीब हूँ। तेरे पास अपार संपदा है, कुल है, खानदान है, बाप-दादे का नाम है, अड़ोस-पड़ोस की

पहचान है, जिला-जवार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं। मगर आखिरी दम तक मैं तेरे खिलाफ़ डटा रहूँगा। अपनी सारी ताक़त तेरे विरोध में लगा दूँगा।"[10]

डॉ.नगीना जैन के मतानुसार-" 'बलचनमा यथार्थ की ज़मीन पर नए संतुलन की खोज है। यह उपन्यास नागार्जुन की पहचान उस लेखक के रूप में करता है, जिसने समाजवादी-बोध को सहज तथा अनायास रूप में आत्मसात् किया है। वह देहाती संस्कृति की सामंती-व्यवस्था का मूल्यांकन तथा प्रतिकार उन समाजवादी शक्तियों के संदर्भ में करते हैं, जो धीमे-धीमे उठ रही है।"[11]

प्रेमचंद जी ने अपने 'गोदान' में जिस निरीह कृषक होरी के शोषण का चित्रण किया है, उसीके विकास के रूप में नागार्जुन ने बलचनमा को प्रस्तुत किया है। 'होरी भी किसान है और बलचनमा भी। होरी ग्रामीण संस्कृति के ध्वंस की सूचना देता है और बलचनमा इसके भावी निर्माण की।'[12] "'गोदान' का होरी समस्याओं और यातनाओं से जूझते हुए जहाँ समाप्त होता है, बलचनमा उन्हीं परिस्थितियों से अपनी जीवन-यात्रा आरंभ करता है। बलचनमा होरी की समाधि का बिरवा है।'[13]

---

1 हिंदी उपन्यास, पृ.304

2 आजकल, मार्च-1986, पृ.35

3 हिंदी उपन्यासः एक अंतर्यात्रा, पृ.231

4 नागार्जुन-संपा. त्यागी, पृ.182

5 बलचनमा,पृ.99

6 वही.

7 वही,पृ.73

8 वही,पृ.199

9 वही,पृ.200

10 वही, पृ.64

11 आँचलिकता और हिंदी उपन्यास-डॉ.नगीना जैन, पृ.134

12 आज का हिंदी उपन्यास-डॉ.इंद्रनाथ मदान,पृ.46

13 आजकल, मार्च-1986, पृ.35

****

डॉ.रुक्ष्मणी पटेल

हिंदी विभाग,
श्री वनराज आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज,
धरमपुर, जि.वलसाड-396050

Copyright © 2012- 2016 KCG. All Rights Reserved. | Powered By : Knowledge Consortium of Gujarat